P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

चन्द्रावती की मन्दिर स्थापत्य कला

सारांश

चन्द्रावती नामक प्राचीन नगरी राजस्थान के दक्षिण–पूर्व में झालरापाटन नगर के दक्षिण में एक–डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित है। चन्द्रावती नगर बहुत प्राचीन है इसे किसने बसाया व किन–किन शासकों ने इस पर शासन किया, निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है इस पर मौर्यों, परमारों, दुर्ग्गण, शिवगण, शंकरगण तथा प्रतिहारों का शासन रहा। सन् 1791 ई. में कोटा राज्य के सेनापति झाला जालिमसिंह (प्रथम) ने झालावाड़ नगर बसाया जो बाद में 8 अप्रैल 1838 ई. को हुई संधि के द्वारा झालावाड़ नामक स्वतंत्र राज्य की राजधानी बना। झालरापाटन का कस्बा सन् 1796 ई. में झाला जालिमसिंह द्वारा प्राचीन चन्द्रावती से एक–डेढ़ किलोमीटर के फासले पर बसाया गया था जिसके निर्माण में चन्द्रावती नगरी के अवशेषों के पत्थर भी उपयोग में लिये गए थे।[1] इसके पश्चिम, दक्षिण एवं दक्षिण–पूर्व में मध्यप्रदेश प्रान्त है। उत्तर–पश्चिम में राजस्थान का कोटा तथा उत्तर–पूर्व में बारां जिला है।

मुख्य शब्द : चन्द्रावती का मन्दिर, स्थापत्यकला।

सुरेश कुमार मीणा
शोधार्थी,
इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर

प्रस्तावना

जेम्स टॉड़ को शीतलेश्वर महादेव मन्दिर से राजा दुर्ग्गण का शिलालेख [2] (12 दिसम्बर, 1820 ई.) प्राप्त हुआ था। शिलालेख के अनुसार राजा दुर्ग्गण के काल में प्रजा सुख से रहती थी। उसी के समय में देव नाम का एक सत्यवादी व्यक्ति था। उसका कनिष्ठ भ्राता वापक था, जो राजा के दरबार का एक प्रमुख अधिकारी था उसने देखा कि वृद्धावस्था में कई विपत्तियाँ आती हैं और कभी विरह का दुःख भी भोगना पड़ता है। इन विपत्तियों से छुटकारा पाने के लिये उसने भगवान शंकर जो अपने मस्तक पर चन्द्र धारण करते हैं, उनके मन्दिर का निर्माण पुर्नजन्म एवं मृत्यु से मुक्ति पाने के लिये करवाया। यह बताया कि केवल भक्ति ही मनुष्य की सच्ची साथी है, जो पुण्यात्मा व्यक्तियों की विपत्तियों के समय रक्षा करती है और मृत्यु के पश्चात् भी भक्ति ही काम आती है क्योंकि तब उसके मित्र और सम्पत्ति सब छोड़कर चलें जाते हैं। विक्रमी संवत् 746 (690 ई.) की बसन्त ऋतु में भाट सर्वगुप्त द्वारा रचित इस शिलालेख के लेखन का कार्य अच्युत के पुत्र बामन ने किया, जो एक कुशल शिल्पकार था और इस लेख को शिलालेख पर अंकित कर सका। उसी समय में इस नगर में मंदिर आदि भवनों का निर्माण कार्य हुआ होगा। टॉड तथा अन्य लेखकों ने झालरापाटन नगर का उल्लेख 'घंटियों के नगर' के रूप में लोक कथाओं में वर्णित चन्द्रभागा में 108 मन्दिरों के उल्लेख के आधार पर ही किया है। परन्तु मन्दिरों के अवशेषों से इनकी संख्या इतनी अधिक प्रतीत नहीं होती है।[3] राजा दुर्ग्गण के शिलालेख से इस क्षेत्र पर मौर्य शासकों की प्रभुता के संकेत मिलते हैं। वि.सं. 795 (738 ई.) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि यह क्षेत्र किसी नागवंशी शासक के अधीन था जिसने सम्भवतः मौर्यों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। विक्रमी संवत् 770 (713 ई.) के चित्तौड़गढ़ शिलालेख में मौरी (मौर्य) शासकों के नामों का उल्लेख है। बारां जिले के शेरगढ़ में देवदत्त नामक बौद्ध मतानुयायी नागवंशी राजा का विक्रमी संवत् 847(790 ई.) माघ सुदी 6 के शिलालेख में एक बौद्ध विहार के निर्माण का उल्लेख है।[4] यहाँ मिले 'पंचमार्क्ड' सिक्कों से संकेत मिलता है कि यह नगरी मौर्यकाल में विद्यमान थी। क्षेत्रीय मौर्य शासकों के पश्चात् यह क्षेत्र धार के परमारों के अधीन हो गया जैसा कि झालरापाटन के सर्व सुखिया कोठी के विक्रमी संवत् 1143 (1086 ई.) वैशाख शुक्ल 10वीं के लेख के अनुसार उदयादित्य के राज्यकाल में जनक नामक तेली पटेल ने मंदिर और वापी का निर्माण करवाया इसमें उदयादित्य का संबंध भोज परमार से बताया गया है।[5] विक्रमी सम्वत् 1199(1142 ई.) के शिलालेखों में परमार शासक नरवर्मदेव (नरवर्मन) तथा यशोवर्मदेव (यशोवर्मन) व उनके मंत्रियों के नामों के उल्लेख से ज्ञात होता है।[6] यहाँ से जो पुरावशेष मिले हैं वे वि.सं.

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435
Periodic Research

746 (689 ई.) से मध्यकाल तक के हैं। अलाउद्दीन खिलजी ने इस नगर में बहुत उत्पात मचाया और काफी कुछ तोड़–फोड़ दिया। अलाउद्दीन से जो कसर रह गई थी वह औरंगजेब ने पूरी कर दी।[7]

अध्ययन का क्षेत्र

चन्द्रावती नदी के तट पर बने अनेक मन्दिरों में शीतलेश्वर महादेव मन्दिर, लकुलीश तथा विष्णु मन्दिर, सूर्य मन्दिर, कालिका माता मन्दिर, वराह मन्दिर एवं कुछ भग्न मन्दिर नदी तट पर विद्यमान हैं।

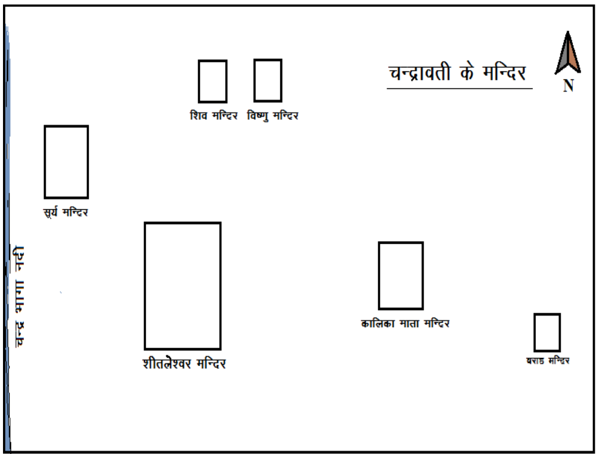

शीतलेश्वर महादेव मन्दिर

शीतलेश्वर महादेव मन्दिर सबसे बड़ा एवं प्राचीन प्रतीत होता है। मन्दिर के समीप से प्राप्त शिलालेख में किसी चन्द्रशेखर शिव मन्दिर का उल्लेख तथा शिव की विश्वमूर्ति रूप में उपासना की गई है।[8] यह कोई अन्य मन्दिर नहीं अपितु शीतलेश्वर मन्दिर ही है। राजस्थान का सबसे प्रारम्भिक तिथि अंकित मन्दिर यही है इसमें मन्दिर निर्माण तिथि वि.सं. 746 (689 ई.) अंकित है।[9] मन्दिर में पाँच पंक्तियों का एक छोटा–सा शिलालेख है जिसकी भाषा संस्कृत है।[10] मन्दिर का मूल नाम चन्द्रमौली मन्दिर है। जिसका निर्माण देवा के भाई वपक्का ने करवाया था।[11]

चित्र संख्या 1 : शीतलेश्वर महादेव मन्दिर

मन्दिर में एक खुला चौक, उपकक्ष तथा पूजाग्रह बने हुए हैं। मन्दिर अत्यन्त जीर्ण–शीर्ण अवस्था में है जिसके ऊपर छत नहीं है तथा भीतर छत का आधा भाग पूरी तरह गायब है। छत में उत्तम कोटी के मूर्ति पटल थे। गर्भगृह में शिवलिंग एवं हरगौरी की प्रतिमा सुशेभित हैं एवं प्रतिमाएँ पूर्ण रूप से सुरक्षित है। भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा नियुक्त श्री हरिमुख जी के अनुसार ''शिवलिंग एवं हरगौरी की प्रतिमा एक ही पाषाण से निर्मित है। पार्वती हाथ में बिजोरा फल लिये शिवलिंग की ओर मुखासिन है।'' गर्भगृह वर्गाकार अष्टशाला है। प्रवेशद्वार के उत्तरांग पट्ट के सिरदल पर दो भुजाओं वालें एवं हाथ में बिजोरा फल धारण किये लकुलीश की प्रतिमा पद्मासन में उत्कीर्ण है। कनिंगम ने इसे विष्णु की प्रतिमा समझा था। प्रवेशद्वार के पास एक सुन्दर व अलंकृत सूर्य मूर्ति हाथों में सनाल कमल धारण किये रखी हुई है। मूर्ति शीतलेश्वर मन्दिर की हरगौरी मूर्ति की समकालीन है, अलंकरण व शैली में समानता दिखाई देती है। गर्भगृह के बाहर मण्ड़प के बीच अन्तराल में सामनें चौकी पर विशालकाय नन्दी की मूर्ति है जो 5′ लम्बी एवं 2′ चौड़ाई की है एवं सिर तक ऊँचाई 3′3′′ है। मन्दिर के द्वार अजन्ता शैली के हैं। गर्भगृह में मुख्य अधिष्ठाता देव के रूप में शिव के लकुलीश रूप की उपासना की जाती थी।[12] जो पाशुपत सम्प्रदाय के जन्मदाता थे। यद्यपि शीतलेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्वार हो चुका है परन्तु अब भी मण्डप के कुछ स्तम्भ, गर्भगृह एवं अधिष्ठान अपने मूल रूप में विद्यमान है। प्रवेश द्वार के सिरदल पर दो भुजाओं वाले लकुलीश की प्रतिमा उत्कीर्ण है।[13]

सूर्य मन्दिर

शीतलेश्वर मन्दिर की दक्षिण–पश्चिम दिशा में एक अन्य शिव मन्दिर है, जिसमें पंचमुखी शिवलिंग प्रतिष्ठित है। मन्दिर का पुर्ननिर्माण किया हुआ है किन्तु गर्भगृह की छत प्राचीन है। मन्दिर का आधार विषालता लिये हुए एवं अलंकृत मूर्तियों से सुसज्जित है। बाह्य दीवारों में कुछ ताकें जोड़ दी गई हैं। शिवलिंग में शिव के विभिन्न रूप बने हुए हैं। मन्दिर के अन्दर विष्णु की 4′ 6′′ ऊँचाई की एक त्रिमुखी प्रतिमा है जिसके दोनों ओर स्त्री आकृतियों का अंकन है। यह सूर्य के संयुक्त रूप को प्रकट करती है। कनिंगम[14] ने मन्दिर योजना में इसे '।' चिह्नित किया एवं इस प्रकार का कोई शिवलिंग इसमें नहीं बताया । सम्भवतः इसे बाद में लगाया गया हो।

लकुलीश तथा विष्णु मन्दिर

शीतलेश्वर महादेव मन्दिर के पीछे लकुलीश (शिव) तथा विष्णु (सात सहेली) के 10वीं शताब्दी के दो मन्दिर स्थित है। यद्यपि ये दोनों मन्दिर एक जैसे दिखाई देते हैं किन्तु लकुलीश मन्दिर में लकुलीश तथा शिव की प्रतिमायें हैं, एक लिंग भी स्थापित है। मन्दिर परिसर में सुन्दर शिल्प एवं स्थापत्य के दर्शन होते हैं। विष्णु मन्दिर में स्थित गरूड़ प्रतिमा से प्रतीत होता है कि यहाँ विष्णु की विशाल चतुर्भुजी प्रतिमा थी जो औरंगजेब द्वारा तोड़ दी गई। इसके दोनों हाथ तथा सिर तोड़कर अलग कर दिये गये। भग्न प्रतिमा अब भी मन्दिर परिसर में स्थित है। चन्द्रभागा नदी के मुख्य घाट पर जहाँ शीतलेश्वर मन्दिर बना हुआ है। उसके पास चतुर्भुज जी तथा लक्ष्मीनारायण के मन्दिर बने हुए हैं। उनके उत्तर में कुछ मन्दिर भग्नावस्था में पड़े हैं।[15]

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435

चित्र संख्या 3 : चन्द्रावती के मन्दिर

कालिका माता मन्दिर

कालिका माता मन्दिर (नवदुर्गा मन्दिर) में देवी के विविध रूपों चामुण्डा, महिषामर्दिनी आदि की उपासना होती थी। आज यह अत्यन्त जीर्ण–शीर्ण स्थिति में विद्यमान हैं। नवदुर्गा मन्दिर में देवी के भयानक रूपों को गरिमान्वित किया गया है। मन्दिर की प्रतिमाओं से बोध होता है कि यह क्षेत्र 8वीं–9वीं शताब्दी तक शक्ति पूजा का एक प्रमुख केन्द्र रहा होगा। यहाँ की कुछ प्रतिमाएँ झालावाड़ संग्रहालय में सुरक्षित है।[16] चन्द्रावती के महाकाली मन्दिर में संरक्षित 5 फीट की नग्न एवं भयानक अष्टबाहू देवी की प्रतिमा है। इसके छः कर भग्न है शेष दो करों में से उसनें ऊर्ध्वकर में ड़मरू तथा अधोकर में एक उल्टे हुए पुरूष के दोनों पैर पकड़ रखें हैं। देवी के शीष पर मुकुट तथा नाभि में वृश्चिक का अंकन है। जो तंत्र साधना सूचक है। इनके पैरों के समीप दक्षिण व वाम पार्श्व में दो अन्य नग्न मूर्तियाँ, जो दशभुजी है। इसी क्रम में इनके निकट दो काली देवी की कंकाल सदृष्य मूर्तियाँ हैं जो अत्यंत भयानक है। इसके निकट ही एक द्विभुजी तथा दूसरी दशभुजी नग्न स्त्री मूर्ति है। सम्भवतः यह काली देवी के साथ योगिनी रूप में बनाई गई होगी। इन सभी देवियों के पृष्ट भाग में वाहनरूप में गदर्भ की आकृतियाँ दिखाई देती है। इस भू–भाग में गदर्भवाहन देवी के साथ प्रदर्शित तो किया जाता था परन्तु तब तक देवी के आयुधों में शूलादि की गणना नहीं की जाती थी। सम्भवतः इसका शीतला के रूप में ऐसा स्वरूप प्रचलित रहा हो एवं कालान्तर में उसे नग्नावस्था तथा रासभासना रूप में प्रस्तुत किया गया हो।[17]

चित्र संख्या 4–7 : कालिका माता मन्दिर में संग्रहित प्राचीन प्रतिमाएँ

वराह मन्दिर

यह मन्दिर पूर्ण रूप से ध्वस्त हो चुका है अब केवल नाम मात्र के अवशेष रहें हैं। यहाँ से प्राप्त वराह प्रतिमा की चौकी के अभिलेख[18] में पाशुपत आचार्य द्वारा लकुलीश की उपासना के उल्लेख से लकुलीश सम्प्रदाय की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। इस अभिलेख में शैव आचार्य ईशानजमु का उल्लेख है जो चन्द्रभागा के तट पर रहते थे। सम्भवतः पाशुपत सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण इस मन्दिर के प्रमुख पुजारी भी रहे होंगें।[19]

अध्ययन का उद्देश्य

मन्दिर हमारी आध्यात्मिक भावना का पवित्र स्थान है जिसमें भारतीय वास्तुकला का उत्कृष्ट विकास देखने को मिलता है। इसका विकास भारत के किसी विशेष धर्म से नहीं वरन् मनुष्य में आकृति पूजा की भावना से हुआ है। मनुष्य ने ईश्वर, देवता अथवा महापुरूष की उपासना के लिए जो मूर्ति बनाई, उन्हें उसने समय–चक्र के अनुसार पवित्र भवनों में स्थापित किया। ये भवन विभिन्न रूपों और आकारों में विकसित हुए। विभिन्न रूपों में इनके विकसित होने का कारण सामग्री का उपयोग, धार्मिक भावना, कृत्य और विश्वास रहा है।[20]

मन्दिरों के उद्भव और विकास का इतिहास काफी ऊहापोह के बाद भी तिमिराच्छत्र ही है। वैदिक साहित्य में यद्यपि मूर्तियों का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं है तथापि अग्नि, इन्द्र, सविता, सूर्य, वरूण, विष्णु आदि देवताओं और अदिति, पृथ्वी, अम्बिका आदि देवियों की उपासना का उल्लेख हुआ है। इनका विकास चाहे प्रकृति की शक्तियों के मूर्तन के रूप में हुआ हो अथवा वे वीर पूजा से विकसित हुए हो, जिस रूप में इनका वर्णन उपलब्ध है, उनसे ज्ञात होता है कि उनकी मूर्तियाँ किसी न किसी रूप में अवश्य बनायी जाती रही होगी।[21]

आरम्भिक काल के बने हुए मन्दिरों के साक्ष्य बहुत कम उपलब्ध हैं, परन्तु जो साक्ष्य मिले हैं, उनसे ज्ञात होता है कि आकार में छोटे और ईंट तथा लकड़ी से निर्मित सादे मन्दिर थे। आरम्भिक काल के इन सादे मन्दिरों ने सातवीं शताब्दी के अंत में एक विशिष्ट और व्यवहारिक रूप धारण करना शुरू कर दिया। जैसे–जैसे पूजा विधि की जटिलता बढ़ी वैसे– वैसे मन्दिर के विभिन्न अंगों का विकास हुआ।[22] उत्तर गुप्तकाल में हाड़ौती क्षेत्र के विभिन्न भागों मे शैव, वैष्णव व जैन मन्दिरों का विकास हुआ। कंसुआ, भीमगढ़, इन्द्रगढ़, काकूनी आदि स्थलों से हाड़ौती के प्राचीन स्थापत्य कला वैभव का स्मरण होता हैं। भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही

भारतीय मन्दिर स्थापत्य कला का ह्रास प्रारम्भ हो जाता हैं। मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा प्राचीन मन्दिरों को नष्ट करने तथा नये मन्दिरों के निर्माण पर रोक के पश्चात् भी कुछ मन्दिरों का निर्माण हुआ एवं कुछ इन आक्रान्ताओं से बच गये जो खण्डहरों के रूप में अपने अतीत को अब तक बचाये हुए हैं। किन्तु आज भी चन्द्रावती क्षेत्र में बहुत से मन्दिर उनके प्राचीन गौरव की याद दिलाते हैं। चन्द्रावती के प्राचीन मन्दिरों को इतिहास एवं पुरातत्व की दृष्टि से अत्यल्प पाठक ही जानते हैं। अतः ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या कर चन्द्रावती क्षेत्र की मन्दिर स्थापत्य कला को लोगों के सामने लाना, इस शोध कार्य का प्रमुख उद्देश्य हैं जिससे कि अधिक से अधिक पाठक चन्द्रावती क्षेत्र की मन्दिर स्थापत्य कला से परिचित हो।

साहित्यावलोकन

चन्द्रावती क्षेत्र की मन्दिर स्थापत्य कला का विभिन्न इतिहासकारों एवं कलाविदों द्वारा अपने–अपने अध्ययन के अनुसार उल्लेख किया गया है।

जेम्स टॉड(1841) ने शीतलेश्वर मन्दिर से प्राप्त राजा दुर्ग्गण के शिलालेख का मूल पाठ और अनुवाद अपने ग्रंथ 'एनाल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' में प्रकाशित किया। इसमें कुछ दोषों को दूर कर जी. ब्यूहलर (1884) ने 'इण्डियन एण्टीक्वरी' में प्रकाशित कराया। शीतलेश्वर मन्दिर के पीछे शिव एवं विष्णु के दो प्राचीन मन्दिर स्थित हैं कनिंघम(1885) ने दोनों मन्दिरों को शिव मन्दिर ही बताया है।

नीलिमा वशिष्ठ (2001) ने 'राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा' में कालिका माता मन्दिर के लिए कहा है कि इस मन्दिर का आकार तथा तलछन्द इतना छोटा एवं अन्दर संरक्षित मूर्तियों का आकार इतना वृहद है कि यह सहज अनुमान होता है कि ये सभी मूर्तियाँ इस मन्दिर का अंग नहीं हो सकती, अपितु किसी अन्य स्थान से लाकर यहाँ एकत्रित की गई है। अतएव चन्द्रभागा के तट पर देवी के एक अन्य बड़ा मन्दिर रहनें की सम्भावना इन्होंने प्रकट की है।[23]

डॉ. मोहनलाल गुप्ता(2012) ने 'कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन' में चन्द्रावती के मन्दिरों का उल्लेख करते हुए बताया है। कि महाकाली का मन्दिर मूलतः भगवान विष्णु को समर्पित था। डॉ. मोनिका गौतम (2015) ने 'कोटा क्षेत्र की मूर्तिकला' में चन्द्रावती एवं झालावाड़ संग्रहालय में रखी देवी की विभिन्न प्रतिमाओं की व्याख्या की हैं।

नीलिमा वशिष्ठ (2016) ने 'कला–विमर्श' में शिव के नृत्यरत रूप का उल्लेख किया है जिसकें विभिन्न रूप झालरापाटन के सूर्य मन्दिर, नव दुर्गा मन्दिर एवं बाड़ोली के मन्दिरों में देखनें को मिलते है।[24] आज भी चन्द्रावती परिसर में स्थित इन प्राचीन मूर्तियों के पर्याप्त अध्ययन की आवश्यकता है जिससे इसके प्राचीन वैभव का विस्तृत स्मरण प्राप्त हो सकें ।

निष्कर्ष

उदयादित्य परमार के सर्वसुखिया कोठी के वि. सं. 1143 के अभिलेख के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि चन्द्रभागा के तट पर कुछ अन्य शिव मन्दिर भी थे।[25] गंगधार (423 ई.)[26] के अभिलेख में उल्लेखित डाकिनी के मन्दिर तथा इस क्षेत्र के शक्ति पूजा एवं तांत्रिक अभिचारों का केन्द्र होने के तथ्य की पुष्टि करता है। कालिका मन्दिर में चामुण्डा तथा अन्य देवी मूर्तियाँ संरक्षित हैं, इन मूर्तियों में नग्नता को स्पष्टता से अंकित किया गया है। चन्द्रावती में राजस्थान का सबसे प्रारम्भिक तिथि सवंत् 746(689 ई.) अंकित मन्दिर शीतलेश्वर महादेव मन्दिर है। शीतलेश्वर के अतिरिक्त यहाँ अन्य मन्दिर भी हैं। जिनमें सम्भवतः कुछ मन्दिर इससें भी प्राचीन हो सकतें हैं। इन मन्दिरों की प्राचीन प्रतिमाएँ मन्दिर परिसर में चारों ओर बिखरी पड़ी हैं कुछ प्रतिमाएँ कालिका माता मन्दिर में संरक्षित है। इन सभी प्राचीन प्रतिमाओं एवं चन्द्रावती मन्दिर समूह को पर्याप्त संरक्षण की आवश्यकता है।

चन्द्रावती मन्दिर की सभी प्राचीन प्रतिमाओं को एक स्थान पर संरक्षित करना चाहिए। इसके प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व वैभव के प्रति लागों में जागरूकता उत्पन्न कर इसे वैश्विक पटल पर पुनः स्थापित करनें के प्रयास की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झालावाड़, 1998, पृ.सं. 502–503*
2. *Tod, James, Annals And Antiquities Of Rajasthan, VOL-II, S.K. Lahiri and Co.,Kolkata,1902, Pg. 1076*
3. *Tod, James, Annals And Antiquities Of Rajasthan, VOL-I to VOL-III, London, 1841, Reprint 1920, Pg. 1784*
4. *शर्मा, डॉ. मथुरालाल, कोटा राज्य का इतिहास, भाग–1, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1939, पृ. सं. 27*
5. *मोहनलाल गुप्ता, कोटा संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, तीसरा संस्करण, 2012, पृ.सं. 89*
6. *राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झालावाड़, 1998, पृ.सं. 36*
7. *गुप्ता, मोहनलाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 90–91*
8. *ब्यूलर, जी., "टू इन्सक्रिप्शन्स फ्राम झालरापाटन", इण्डियन एण्टीक्वेरी, 5, 1976, पृ.सं. 180*
9. *Deva, Krishna, Temples Of North India, National Book Trust, New Delhi,1969, Pg. 28*
10. *हाड़ौती का सांस्कृतिक अध्ययन, राजकीय संग्रहालय, कोटा, 1995, पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग राजस्थान, जयपुर, पृ. सं. 5*
11. *गुप्ता, मोहनलाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 89*
12. *गुप्ता, मोहनलाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 66*
13. *Cunningham, A., A Tour In Eastern Rajputana In 1882-83, Govt. Printing, Calcutta,1885, Pg. 125*
14. *Cunningham, A., Ibid , Pg. 266 – राजकीय संग्रहालय, झालावाड़, प्रतिमा क्रमांक–42*
15. *गुप्ता, मोहनलाल, पूर्वोक्त, पृ.सं. 90*
16. *राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, झालावाड़, 1998, पृ.सं. 36*

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

17. गौतम, डॉ. मोनिका, कोटा क्षेत्र की मूर्तिकला, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2015, पृ. सं. 50
18. यह वर्तमान में अजमेर म्यूजियम में रखी है।
19. भण्डारकर, डी. आर., "एन एकलिंग स्टोन इन्सक्रिप्शन एण्ड दि ओरिजिन एण्ड हिस्ट्री ऑफ दि लकुलीश सेक्ट", ज.बा.ब्रा.रा.ए.सो. 22, पृ.सं. 158
20. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मंदिर वास्तुकला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,1989, पृ.सं. 67
21. गुप्त, परमेश्वरी लाल, मंदिर वास्तुकला, पूर्वोक्त, पृ.सं. 143
22. भारत के मंदिर, सूचना प्रसारण और संचार मंत्रालय, नई दिल्ली, अप्रैल, 1969, पृ.सं. 8–9
23. वशिष्ट, नीलिमा, राजस्थान की मूर्तिकला परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, प्रथम संस्करण 2001, पृ.सं. 39
24. वशिष्ट,नीलिमा, कला–विमर्श, लिटरेरी सर्किल, जयपुर, प्रथम संस्करण 2016, पृ. सं. 69
25. Rainu, B.N., Glossaries of Marwar and The Glossarius Rathours, Archaeology Department , Jodhpur, 1943, Pg. 223-225
26. राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर,झालावाड़,1998, पृ.सं. 36